अध्याय – 13

सफल प्रजातंत्रवाद के लिए आवश्यक बातें : डॉ. भीमराव अम्बेडकर

जन्म – सन् 1891 ई.
मृत्यु – सन् 1956 ई.

भारतीय संविधान के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान देने वाले महान नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म मध्यप्रदेश के एक छोटे से गाँव महू में हुआ। आपके पिता का नाम रामजी मालोजी सकपाल और माता का नाम भीमाबाई था। कई सामाजिक और वित्तीय बाधाओं का मुकाबला करते हुए शैक्षिक उन्नति करते रहे और डॉक्टरेट तक की उपाधि प्राप्त की।

उन्होंने जातिगत भेदभाव का डटकर विरोध किया और समतामूलक समाज व प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना में विशेष योगदान दिया। स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री रहे तथा संविधान के प्रारूप को संसद में स्वीकृत कराया।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं–द कास्ट्स इन इंडिया,देयर मेकेनिज्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट,द अनटचेबल्स, हू आर दे?, हू आर द शूद्राज, बुद्धा एंड हिज धम्मा, थाट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्टेट्स, द प्रॉब्लम ऑफ़ द रफपी, द एबोलुशन ऑफ़ प्रोविंशियल फ़ायनांस इन ब्रिटिश इंडिया, द राइज एंड फ़ॉल ऑफ़ द हिंदू वीमैन ,एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट आदि। इनका सम्पूर्ण वाङ्मय भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय द्वारा 'बाबासाहब अम्बेड़कर सम्पूर्ण वाङ्मय' नाम से 21 खण्डों में प्रकाशित हो चुका है।

पाठ परिचय

पाठ्य पुस्तक में चयनित सफल प्रजातंत्रवाद के लिए आवश्यक बातें भाषण में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने परिपक्व राजनीतिक मंथन और भारत में लोकतंत्र की मज़बूती के लिए आवश्यक उपायों पर बेबाक विचार व्यक्त किए हैं। प्रजातंत्र में चुनी हुई सरकार को जनता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए तथा बहुमत को अल्पमत के प्रति अधिक संवेदनशील होने की जरूरत है। लेखक ने दूसरे देशों की स्वस्थ लोकतांत्रिक परम्पराओं से प्रेरणा ग्रहण करने तथा भारत में विधायिकाओं में अधिक जवाबदेही व संयत चर्चा की आवश्यकता पर बल दिया है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रजातंत्र की सफलता हेतु दिए गए सुझाव आज भी प्रासंगिक हैं।

सफल प्रजातंत्रवाद के लिए आवश्यक शर्तें

यह स्वीकृत मत है कि प्रजातंत्रवादी शासन व्यवस्था में जो सत्तारूढ़ हैं, उन्हें प्रत्येक पांचवें वर्ष लोगों के पास जाना चाहिए और उनसे पूछना चाहिए कि क्या उनकी सम्मति में वे इस योग्य हैं कि उन्हें सत्तारूढ़ रहने दिया जाए ताकि वे उनके हितों का संरक्षण कर सकें, उनके सौभाग्य को बना सकें और

उनकी आरक्षा कर सकें। प्रजातंत्र का केवल इतने से ही संतोष नहीं होता कि प्रत्येक पांचवें वर्ष सरकार की रोक–थाम की जा सके और इस बीच के समय में कोई सरकार को कुछ भी न कह–सुन सके। प्रजातंत्रवाद चाहता है कि न केवल पाँच वर्ष की समाप्ति पर सरकार का निषेध किया जा सके, बल्कि ऐसी भी व्यवस्था होनी चाहिए कि सरकार के विरुद्ध किसी भी समय और तुरन्त निषेधात्मक कार्रवाई की जा सके। अब यदि आपको मेरे कहने का आशय स्पष्ट हो तो प्रजातंत्रवाद का मतलब है कि किसी भी आदमी को सदैव शासन करते रहने का अधिकार नहीं। यह शासन करने का अधिकार लोगों की स्वेच्छा पर निर्भर करता है उस अधिकार को लोकसभा भवन में ही चेलेंज किया जा सकता है। आप देखे कि विरोधी पक्ष का होना कितना आवश्यक है। विरोधी पक्ष के होने का मतलब है कि सरकार हमेशा हथौड़े के नीचे रहती है। जो लोग सरकारी पार्टी में नहीं हैं, उन लोगों की दृष्टि में भी प्रत्येक सरकारी कार्य का औचित्य सिद्ध होना चाहिए। दुर्भाग्यवश हमारे देश में नाना कारणों से मेरी सम्मति में प्रधान कारण सरकारी विज्ञापनों से मिलने वाली आय हो सकती है– सरकारी पक्ष का कहीं ज्यादा प्रचार होता है। विरोधी पक्ष का बहुत कम। विरोधी पक्ष समाचारपत्रों के लिए किसी आय का साधन नहीं बन सकते। शासक दल के सदस्यों के भाषणों से समाचारपत्रों के अन्तिम पृष्ठों के भी अन्त में कहीं जाकर जगह पाते हैं। मैं प्रजातन्त्रवाद की आलोचना नहीं कर रहा हूँ। प्रजातन्त्रवाद की सम्यक् सफलता के लिए विरोधी पक्ष का होना एक अनिवार्य शर्त है।

क्या आप जानते हैं कि इंग्लैण्ड में विरोधी–पक्ष के लिए न केवल स्थान है, बल्कि विरोधी–पक्ष के कार्य को चालू रखने के लिए विरोधी–पक्ष के नेता को सरकारी खजाने से वेतन दिया जाता है। उसे एक सेक्रेटरी दिया जाता है। उसे कई सांकेतिक लेखक तथा दूसरे कर्मचारी दिये जाते हैं। लोकसभा भवन में उसके लिए पृथक् एक कमरा रहता है, जिसमें वह अपना कार्य चलाता है। इसी प्रकार आप देखेंगे कि कैनेडा में भी जिस प्रकार प्रधानमंत्री वेतन प्राप्त करता है उसी प्रकार विरोधी–पक्ष का नेता भी वेतन प्राप्त करता है। इन दोनों देशों के लोग सोचतें हैं–''कि कोई न कोई होना चाहिए जो सरकार की गलतियों की की ओर भी अंगुली निर्देश कर सके। वे चाहते हैं कि सरकारी गलतियाँ बताने का कार्य सतत निरन्तर होता रहना चाहिए। इसलिए वे विरोधी पक्ष के नेता पर रुपया खर्च करना बेकार नहीं समझते।

मैं समझता हूँ, कि एक तीसरी शर्त भी है जो प्रजातन्त्रवाद की सफलता की पूर्व–आवश्यकता है। वह यह है कि कानून तथा शासन की दृष्टि से सभी समान होने चाहिए। यद्यपि ऐसे छुटपुट अवसर गिनाए जा सकते हैं, जहाँ कानून की समान दृष्टि नहीं रही है, तो भी मैं नहीं समझता कि इस समय मुझे कानून की दृष्टि में समानता के बारे में कुछ बहुत अधिक कहना चाहिए; लेकिन शासन की दृष्टि में समानता की बात महत्त्वपूर्ण है। आपमें से बहुत से लोगों के लिए यह सम्भव है कि या तो ऐसी घटनाएं याद कर सकें, या ऐसी घटनाओं की कल्पना कर सकें जबकि शासनारूढ़ पार्टी अपनी पार्टी के सदस्यों के हित में ही शासन करती प्रतीत हुई हो। कुछ भी हो, मैं इस प्रकार की कितनी ही घटनाएं याद कर सकता हूँ। आप कल्पना करें कि एक कानून है जो कहता है कि कोई भी आदमी बिना लाइसेंस के किसी विशेष वस्तु का व्यापार नहीं कर सकता। क्योंकि कानून सबके लिए एक समान है, इसलिए कोई भी उस कानून पर आपत्ति नहीं उठा सकता। उस कानून विशेष में कहीं कुछ भी पक्षपात नहीं है; लेकिन हम एक कदम आगे जायें और देखें कि जब कोई आदमी किसी अफसर या मंत्री के पास किसी वस्तु–विशेष का व्यापार करने के लिए लाइसेंस माँगने जाता है। मैं नहीं जानता लेकिन लगता है कि एकदम सम्भव है। सम्भव है कि मिनिस्टर सबसे पहले

उसकी टोपी की ओर देखे कि वह किस रंग की टोपी पहने हुए है?यदि वह ऐसी टोपी पहने हुए है कि जो उसे अच्छी लगती है तो उसे निश्चय हो जाता है कि वह उसकी पार्टी का आदमी है। अब एक दूसरा आदमी जाता है, जो दूसरी तरह की पोशाक पहने हुए है, या दूसरी पार्टी का है। वह मिनिस्टर पहले आदमी को लाइसेंस दे देता है, दूसरे को इन्कार कर देता है। शासन की दृष्टि में दोनों आदमी लाइसेंस लेने के समान रूप से अधिकारी हैं। किसी सुविधा विशेष का दिया–लिया जाना एक छोटी सी बात है और इसका प्रभाव सम्भवतः थोड़े से लोगों पर ही पड़ता है। अब हम एक कदम और आगे बढ़ें और देखे कि जब ऐसा भेदभाव शासन में प्रविष्ट हो जाता है तब क्या होता है? मान लीजिए कि किसी पार्टी के किसी सदस्य ने कोई अपराध किया है। उसके विरुद्ध काफी गवाही है। उस पर मुकदमा चल रहा है। अब उस इलाके में उस पार्टी का मुखिया मजिस्ट्रेट के पास जाता है और जाकर कहता है कि इस आदमी पर मुकदमा चलाना ठीक नहीं, क्योंकि यह पार्टी का आदमी है, या आगे बढ़कर यह भी कहता है–''यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं इस बात की सूचना मिनिस्टर को दे दूंगा और यहाँ से आपका तबादला अन्यत्र करा दूंगा।'' आप कल्पना कर ही सकते हैं, कि इससे सारी शासन–व्यवस्था में अव्यवस्था और आपा–धापी का साम्राज्य हो जायेगा। किसी समय अमेरिका में यही हाल था। उस समय की शासन–पद्धति 'विकृत–पद्धति'के नाम से प्रसिद्ध है। जब एक पार्टी शासनारूढ़ होती थी तो पहली पार्टी द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारियों को उनके पदों से पृथक् कर देती थी, यहाँ तक कि क्लर्कों और चपरासियों तक को भी निकाल बाहर किया जाता था। उन सबकी जगह नई पार्टी के नये आदमी नियुक्त किये जाते थे। वास्तव में काफी वर्षों तक अमेरिका में कहने–सुनने लायक किसी भी तरह की शासन–व्यवस्था नहीं थी। बाद में यह बात स्वयं उनकी समझ में आ गई कि प्रजातन्त्रवाद के हित में यह ठीक नहीं है। उन्होंने इस 'विकृत–पद्धति' को बदल दिया।

ताकि शासन–व्यवस्था शुद्ध बनी रहे, न्यायसंगत रहे, और राजनीति से दूर रहे, इसलिए इंगलैण्ड के लोगों ने 'राजनीतिक कार्यालय' और 'सिविल–कार्यालय' में भेद कर दिया है। 'सिविल–कर्मचारी' स्थायी रूप से बने रहतें हैं। कोई भी पार्टी शासनारूढ़ हो, यह सभी पार्टियों की आज्ञानुसार कार्य करने वाले होते हैं। इनके कार्य में कोई मिनिस्टर हस्तक्षेप नहीं करता। जब हमारे देश में ब्रिटेन के लोगों का शासन था, तो यहाँ भी यही बात प्रचलित थी। मुझे स्पष्ट रूप में एक अनुभव याद आ रहा है जो मुझे उस समय हुआ जब मैं 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया' का 'मेम्बर' था। आप ध्यान देंगे तो आप देखेंगे कि लगभग हर वाइसराय के नाम दिल्ली में कोई–न–कोई 'स्ट्रीट' या क्लब है। ऐसे एक ही वाइसराय या गवर्नर जनरल हैं, जिनके नाम पर कोई 'स्ट्रीट' या और कोई दूसरी संस्था नहीं है, और उस गवर्नर जनरल का नाम है लार्ड लिनलिथगो। उसका प्राइवेट सैक्रेटरी मेरा मित्र था। उस समय पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट मेरे पास था और ऐसे बहुत से काम थे जो मेरी ही देख–रेख में हो रहे थे। वह आया और धीरे से मुझे कहा–''मेरे प्रिय डॉक्टर! क्या आप लार्ड लिनलिथगो के नाम पर किसी संस्था या कार्य का नामकरण नहीं कर सकते?'' उसने कहा–'' यह बुरी तरह खटकता है कि सभी का नाम है। केवल उनका ही नाम नहीं है।''

मैंने कहा–''मैं विचार करूँगा''। उन दिनों मैं जमुना के ऊपर एक बाँध बनवाने पर विचार कर रहा था, ताकि गरमी के मौसम में दिल्ली के लोगों को पानी का कष्ट न हो।क्योंकि गरमी के दिनों में नदी सूख जाती है। मैंने अपने सैक्रेटरी को, जिसका नाम एच.सी.परायर था और जो एक यूरोपियन था, कहा–''परायर महाशय! वायसराय के सैक्रेटरी ने मुझे यह बात कही है। क्या तुम समझते हो, कि इस सम्बन्ध में हम कुछ

कर सकते हैं?''

आप क्या समझते हैं कि उसने उत्तर दिया होगा। उसका जवाब था–''महोदय, हमें ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए।'' आज मुझे लगता है कि किसी का ऐसा उत्तर देना असम्भवप्रायः है। मिनिस्टर की इच्छा के प्रतिकूल किसी अफसर का कुछ कहना, आज मुझे एकदम असम्भव लगता है; लेकिन उन दिनों यह सम्भव था क्योंकि ब्रिटेन की तरह हमने भी बुद्धिमतापूर्ण फैसला कर रखा था कि सरकार की शासन–व्यवस्था में दखल नहीं देना चाहिए। सरकार का काम है पॉलिसी या नीति तय कर देना। उसका यह काम नहीं कि शासन–व्यवस्था में हस्तक्षेप करे या पक्षपात से काम ले। यह बात महत्त्वपूर्ण है। मुझे लगता है कि अब हम उस परम्परा से दूर हटते जा रहे हैं और कहीं ऐसा न हो कि हम इस मर्यादा का एकदम परित्याग कर दें।

मेरे मत के अनुसार प्रजातन्त्रवाद के सफल संचालन के लिए जो चौथी शर्त आवश्यक है वह है कि हम 'विधान–सम्बन्धी नैतिकता' का पालन करें। बहुत से लोगों के मन में विधान के लिए बड़ा उत्साह है। मैं उन लोगों में से हूँ जो वर्तमान विधान को एकदम फेंक देने के लिए तैयार हैं कम से कम नये सिरे से इसकी रचना करने के लिए। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि हमारे विधान में कानूनी–व्यवस्था तो है, लेकिन जिस चीज को हम 'विधान–सम्बन्धी नैतिकता' कहते हैं, उसका अस्थि–पंजर मात्र है। इंगलैण्ड में यह बात विधान की मर्यादा कहलाती हैं और लोगों को खेल के नियमों का पालन करना ही चाहिए। एक–दो बातें जो इस समय मुझे याद आ रही हैं, मैं आपको बताऊँ। आपको याद होगा कि जब तेरह अमरीकी उपनिवेशों ने बगावत की, तो उस समय उनका नेता वाशिंगटन था। यह कहने से कि वाशिंगटन उनका 'नेता' था, अमरीकी जीवन में जो उसका वास्तविक स्थान था, हमें स्पष्ट नहीं होता। वाशिंगटन उनका 'देवता' था, वाशिंगटन उनका 'भगवान' था। यदि आप उसका जीवन–चरित्र और इतिहास पढ़ें तो आपको मालूम होगा कि विधान की रचना होने पर वाशिंगटन ही अमेरिका का प्रथम 'प्रेसिडेण्ट' चुना गया था।जब उसकी अवधि समाप्त हो गई, तो क्या हुआ? उसने दूसरी बार प्रेसिडेण्ट के पद के लिए खड़े होने से इंकार कर दिया। मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि यदि वाशिंगटन दस बार भी प्रेसिडेण्ट पद के लिए खड़ा हुआ होता तो वह हर बार सर्वसम्मति से निर्विरोध चुना जाता। लेकिन दूसरी बार उसने खड़ा होने से इंकार कर दिया। जब उससे इसका कारण पूछा गया तो उसका उत्तर था– ''प्रियवर! आप भूल गये हैं कि हमने इस विधान को किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया है। हमने यह विधान इसलिए बनाया है कि हम कोई वंशपरम्परागत राजा नहीं चाहते थे, हम कोई पैतृक शासन नहीं चाहते थे। हम कोई अनन्य शासक या डिक्टेटर भी नहीं चाहते थे। यदि इंगलैण्ड के राजा की अधीनता त्याग कर, आप लोग इस देश में आकर भी, मुझको ही प्रतिवर्ष, प्रति कालविभाग अपना प्रेसिडेण्ट बनाये रहने लगे, मेरी ही पूजा करने लगे तो आपके सिद्धान्तों का क्या होगा? जब आप मुझे ही इंगलैण्ड के राजा का स्थानापन्न बना देते हैं, तब आप क्या कह सकते हैं कि आपने उसके अधिकार के प्रति विद्रोह किया है?'' उसने कहा–''आपका मेरे प्रति जो विश्वास है,जो भक्ति–भाव है उसके कारण आप चाहे मुझ पर दूसरी बार प्रेसिडेण्ट बनने के लिए दबाव डालने पर मजबूर हों, लेकिन जब मैंने ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, कि हमें वंशानुगत शासन नहीं चाहिए, तो मुझे आपकी भक्ति–भावना के वशीभूत होकर भी दूसरी बार खड़ा नहीं होना चाहिए।'' अन्त में लोगों ने उन्हें कम–से –कम एक ही बार और खड़े होने के लिए राजी कर लिया। उन्होंने मान लिया; लेकिन जब तीसरी

बार, वे फिर आग्रह करने गए तो उसने धत्ता बता दिया।

मैं आपको एक दूसरा उदाहरण दूँ। आप आठवें एडवर्ड ड्यूक ऑफ विण्डसर को जानते हैं, जिनका सम्पूर्ण चरित्र क्रमशः 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में छपा है। मैं गोलमेज कॉन्फ्रेंस में गया था। उस समय वहाँ बड़ा भारी विवाद चल रहा था। प्रश्न यही था कि क्या राजा को अपनी पसन्द की किसी सामान्य स्थिति की औरत से शादी करने का अधिकार है, जबकि वह यह भी नहीं चाहता कि वह औरत 'रानी' मानी जाए, अथवा उसे इतनी भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं है और उसे ऐसा करने के लिए सिंहासन का त्याग ही करना पड़ेगा? श्री बाल्डविन बादशाह के उस औरत से शादी करने का विरोधी था। वह किसी तरह राजी नहीं हो सकता था। उसने कहा–''यदि तुम मेरा कहना नहीं मानते, तो तुम्हें राजगद्दी छोड़ देनी पड़ेगी।'' हमारा मित्र चर्चिल आठवें एडवर्ड का मित्र था। वह उसे उत्साहित कर रहा था। उस समय मजदूर–दल विरोधी दल में था। उनका बहुमत न था। मुझे अच्छी तरह याद है कि मजदूर दल ने इस बात पर गम्भीरता से विचार किया था कि क्या यह अच्छा न होगा कि इसी बात को लेकर श्री बाल्डविन को हराने की कोशिश की जाय, क्योंकि राजा के प्रति वफादर होने के कारण अनुदार दल के बहुत से लोग उनका साथ देने के लिए तैयार हो सकते थे। लेकिन मुझे याद है कि स्वर्गीय प्रो. लास्की ने 'हेराल्ड' में कई लेख लिखकर मजदूर–दल के किसी ऐसे प्रयास की निन्दा की। उन्होंने कहा– ''हमारी यह परम्परागत मर्यादा है कि बादशाह को प्रधानमंत्री की सलाह माननी ही चाहिए। यदि हम इस प्रश्न को खड़ा करके श्री बाल्डविन को हरा देंगे तो ऐसा करना हमारी गलती होगी क्योंकि ऐसा करने से बादशाह को ही बल मिलेगा।'' मजदूर–दल ने उनकी सलाह मानी और कुछ नहीं किया।

यदि आप अंग्रेजों का इतिहास पढ़ें तो आपको ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे जब दल विशेष के नेता किसी एक गलत बात को लेकर अपने विपक्षी दल को कमजोर कर सकते थे; लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि वे जानते थे कि इससे उनके विधान को नुकसान पहुँचेगा और प्रजातन्त्र की हानि होगी।

प्रजातन्त्र की सफलता के लिए एक और बात है जो अत्यन्त आवश्यक है और वह यह है कि अल्पमत पर बहुमत का अत्याचार न हो। अल्पमत का हमेशा यह विश्वास बना रहना चाहिए कि यद्यपि शासन की बागडोर बहुमत के हाथ में है तो भी अल्पमत को हानि नहीं पहुँच रही है और अल्पमत पर कोई अनुचित प्रहार नहीं किया जा रहा है। यह एक ऐसी बात है कि जिसका ब्रिटेन की पार्लियामेंट में बहुत खयाल रखा जाता है। आपमें से काफी लोंगों को इंग्लैंड के 1831 के चुनावों के परिणाम याद होंगे। उस समय श्री रैमजे मैकडानल्ड ने मजदूर–दल से त्यागपत्र दे दिया था और एक 'राष्ट्रीय सरकार' की स्थापना की थी। चुनाव आया तो जिस मजदूर–दल के मैं समझता हूँ 150 सदस्य थे, 650 की कुल सदस्य संख्या में से केवल 50 रह गए। श्री बाल्डविन प्रधानमंत्री बने। तब मैं वहीं था; लेकिन मैंने एक बार भी कहीं यह नहीं सुना कि मजदूर–दल के इन 50 जनों के अल्पमत ने जो कि अनुदार दल के बहुमत की तुलना में बहुत ही अल्पमत था– कभी इस बात की शिकायत भी की हो, कि उन्हें उनके बोलने के उचित अधिकार से वंचित रखा गया या विरोध करने का अवसर नहीं दिया गया अथवा प्रस्ताव उपस्थित करने की सुविधा नहीं दी। अब जरा आप अपनी पार्लियामेंट की ओर देखें। यह जो विरोधी–पक्ष के लोग लगातार निन्दा का प्रस्ताव या कार्य स्थगित करने का प्रस्ताव लाते रहते हैं, मैं उसका समर्थन नहीं करता; लेकिन तब भी, आपने इस बात की ओर ध्यान दिया होगा कि चाहे निदा का प्रस्ताव हो, या चाहे कार्य स्थगित करने का प्रस्ताव हो, शायद

ही कभी किसी प्रस्ताव पर विचार–विमर्श हुआ होगा। मुझे इससे काफी आश्चर्य हो रहा है। जब मैं ब्रिटेन की पार्लियामेंट के वाद–विवाद की रिपोर्ट पढ़ता हूँ तो मुझे एक अवसर नहीं दिखाई देता, जब अध्यक्ष ने किसी कार्य के स्थगित करने के प्रस्ताव पर विचार करने की अनुमति न दी हो। हाँ, यदि सरकारी आज्ञा ही हो, तो दूसरी बात है। जब मैं बम्बई विधानसभा का सदस्य था, तो हमारे मित्रों में से कुछ– श्री मोरारजी, श्री मुंशी तथा खरे और दूसरे कुछ लोग सत्तारूढ़ थे। उन्होंने एक भी बार किसी 'काम रोको' प्रस्ताव पर चर्चा नहीं होने दी। या तो हमारे मित्र श्री मावलंकर जो उस समय अध्यक्ष (स्पीकर)थे, उसे 'विधान–बाह्य' कहकर सहायक हो जाते थे, या जैसा उन्होंने स्वीकार किया, मिनिस्टर 'विरोध' कर देते थे। आप जानते हैं, कि जब एक मिनिस्टर 'विरोध' कर देता है, तब क्या करना होता है। जब एक मिनिस्टर 'विरोध' कर देता है, तो भी आदमी 'काम–रोको' प्रस्ताव लाता है, उसमें जो भी नियमित संख्या होती है, तदनुसार तीस या चालीस हस्ताक्षर उपस्थित करने पड़ते हैं। यह हो सकता है कि यदि सरकार इस बात का निश्चय कर ले, कि वह ऐसे सब 'काम रोको' प्रस्ताव, जो ऐसे लोगों की ओर से उपस्थित किये जाते हैं जो 4, 5, 6, जैसी अल्पसंख्या में लोकसभा के सदस्य हैं, तो अल्पमत रखने वाली जातियों या वर्गों को कभी भी ऐसा अवसर न मिलेगा कि वे अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सकें। इसका परिणाम क्या होता है?इन अल्पमतों में इस प्रकार की विधान विरोधी विद्रोही भावना पैदा होने लगती है। इसलिए यह आवश्यक है कि बहुमत कोई ऐसा काम न करे जिससे अल्पमत के प्रति उसका निरंकुश व्यवहार कहा जा सके।

मैं एक ही बात कहूँगा और उसके बाद अपना भाषण बन्द कर दूंगा। मैं समझता हूँ, कि प्रजातन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समाज नैतिक नियमों का पालन करे। कुछ ऐसा हुआ है कि राजनीतिशास्त्र के आचार्यों ने शायद प्रश्न के इस पहलू पर कभी विचार ही नहीं किया है। उनकी दृष्टि में 'नीतिपरायण' होना एक बात है और 'राजनीति' दूसरी। आप 'राजनीति' सीख सकते हैं, लेकिन 'नीति' के विषय में कोरे अज्ञानी बने रह सकते हैं, मानो 'राजनीति' बिना 'नीति' के ही सफल हो सकती हो। मुझे तो यह एक आश्चर्य में डालने वाली स्थापना मालूम देती है। तो प्रजातन्त्र में होता क्या है?हम एक स्वतंत्र सरकार में प्रजातंत्र की चर्चा प्रायः करते हैं। 'स्वतन्त्र सरकार' से हमारा क्या अभिप्राय होता है?इसका मतलब है कि जीवन के विशाल क्षेत्र में लोग बिना कानून के हस्तक्षेप के अपना रोज का कारोबार चला सकते हैं और यदि कानून बनाना पड़े तो कानून बनाने वाले का यह विश्वास है, कि वह समाज–विशेष इतना सदाचार–परायण अवश्य होगा कि उसमें उस कानून का पालन हो सके। जिस एक आदमी ने प्रजातंत्र के इस पहलू पर भी ध्यान दिया है, वह मैं समझता हूँ, कि लास्की महाशय हैं। अपने एक ग्रंथ में उन्होंने स्पष्ट लिखा है–'' कि प्रजातंत्र में यह मानकर चला जाता है कि समाज नीतिपरायण है। यदि समाज नीतिपरायण न हो तो प्रजातन्त्रवाद टिका नहीं रह सकता, जैसा इस समय हमारे अपने देश में हो रहा है।''

अन्तिम बात, मेरे मत के अनुसार जिसके बिना प्रजातन्त्र का काम नहीं चल सकता, वह है कि लोगों में 'सार्वजनिक अन्तरात्मा' हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ–न–कुछ 'अन्याय' हर देश में होता है। लेकिन 'अन्याय' की मात्रा समान नहीं है। कुछ देशों में 'अन्याय' का प्रभाव बहुत अधिक है। कुछ ऐसे भी हैं जो 'अन्याय' के बोझ से एकदम पिसे जा रहे हैं। बिना किसी कठिनाई के हम इंग्लैण्ड के यहूदियों की बात ले सकते हैं। इन लोगों को कुछ ऐसे अन्यायों को सहन करना पड़ा है, जिन्हें ईसाइयों को कभी सहन नहीं करना पड़ा। इसका परिणाम यही हुआ कि इस अन्याय के विरुद्ध केवल यहूदी लोगों को ही संघर्ष करना

पड़ा। इंग्लैण्ड के ईसाइयों ने कभी मदद नहीं की। वास्तव में वे तो इसे पसन्द करते थे। वास्तविक बात तो यह है कि वह इस 'अन्याय' को पसन्द करते थे। इंग्लैण्ड के एक ही आदमी ने यहूदियों की सहायता की। वह आदमी इंग्लैण्ड का बादशाह था। यह बात असाधारण लगेगी; लेकिन इसका कारण भी असाधारण था, और वह यह था– पुराने ईसाई कानून के अनुसार कोई यहूदी बच्चा अपने मृत पिता की जायदाद का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था। किसी और कारण से नहीं केवल एक इसी कारण से कि वह यहूदी था, ईसाई नहीं था। जो भी बची–खुची सम्पत्ति हो, राज्य की ओर से उसका हकदार राजा होने के कारण, वह सम्पत्ति राजा के अधिकार में चली जाती थी। राजा को यह सब अच्छा लगता था। वह प्रसन्न था। जब किसी मृत यहूदी की संतान अपना प्रार्थना पत्र लिए राजा के पास पहुँचती थी, तो राजा उनके मृत पिता की जायदाद में से थोड़ा सा कुछ उनको दे देता था और शेष अपने लिए रख लेता था; लेकिन जैसा मैंने कहा कि कभी किसी अंग्रेज ने यहूदियों की मदद नहीं की और यहूदियों को अपनी मुक्ति के लिए स्वयं संघर्ष करना पड़ा। 'सार्वजनिक अन्तरात्मा के होने या न होने का यह एक उदाहरण है। 'सार्वजनिकअन्तरात्मा' उस अन्तरात्मा को कह सकते हैं, कि जो हर अन्याय को देखकर विचलित हो उठती है। वह इस बात की परवाह नहीं करती कि उस अन्याय का शिकार किसे होना पड़ रहा है? इसका मतलब हुआ कि चाहे उसे व्यक्तिगत रूप से उन 'अन्याय'से कष्ट होता हो, या न होता हो, जो कोई भी उस 'अन्याय' का भाजन हो उसे उस 'अन्याय' से मुक्ति दिलाने के लिए उसके कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो जाती है।

आप अफ्रीका का उदाहरण लें, एकदम ताजा उदाहरण। वहाँ जो लोग कष्ट पा रहे हैं वे 'भारतीय' हैं। क्या नहीं हैं? श्वेत चमड़ी वालों को कुछ असुविधा नहीं है। तो भी रेवरेण्ड स्काट– जो स्वयं श्वेत चमड़ी वाला है– इस 'अन्याय' के विरुद्ध अपनी पूरी ताकत खर्च कर रहा है। पिछले दिनों मैंने पढ़ा है कि बहुत से लड़के–लड़कियों ने जो स्वयं श्वेत जातियों के है–भी दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के संघर्ष में भाग लिया है। यही 'सार्वजनिक–अन्तरात्मा' कहलाती है। मैं कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहता आपको व्यर्थ चोट पहुँचे। लेकिन कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि हम कितने भुलक्कड़ हैं। हम दक्षिण अफ्रीका की चर्चा करते हैं। मैं अपने मन में सोचता रहा हूँ, कि हम जो दक्षिण अफ्रीका की पृथक्करण की नीति के विरुद्ध इतना बाय–बेला मचाते हैं, जानते हैं कि हमारे हर गाँव में दक्षिण अफ्रीका है। वह वहाँ है– हमें केवल जाकर उसे देखने की जरूरत है। हर गाँव में दक्षिण अफ्रीका है, लेकिन तब भी मैंने शायद ही किसी को देखा हो जो स्वयं 'दलित वर्ग' का न हो लेकिन तब भी 'दलित वर्ग' का पक्ष लेकर उठ खड़ा हो। क्यों?क्योंकि यहाँ 'सार्वजनिक अन्तरात्मा' नहीं है। यदि यही होता रहा तो हम 'अपने में और अपने भारत में' ही कैदी बने रहेंगे। अल्पमत वाले जो इस अन्याय के तले पिस रहे हैं, बहुमत वालों से कभी किसी प्रकार की सहायता न प्राप्त करेंगे, जिससे वे इस अन्याय से मुक्त हो सकेंगे। इन सबसे भी विद्रोह की भावना बढ़ती है, जिससे फिर प्रजातन्त्रवाद को खतरा पैदा हो जाता है।

जो कुछ मैंने कहा, वह कोई ऐसे पिटे–पिटाये स्थिर सिद्धान्त नहीं हैं, जिनका किसी राजनीति–शास्त्रज्ञ ने आविष्कार किया हो। भिन्न–भिन्न देशों के राजनीतिक इतिहासों का अध्ययन करने से मेरे अपने मन पर जो संस्कार पड़ा– यह सब उसी का चित्र–मात्र है।

मेरा विश्वास है कि 'प्रजातंत्र' को बनाये रखने के लिये ये अत्यन्त आवश्यक शर्तें हैं।

शब्दार्थ–

प्रजातंत्र– वह शासन पद्धति जिसमें प्रजा शासक चुनती है।

सत्तारूढ़ – शासन पर बैठे	संरक्षण –निगरानी, देखरेख
सैक्रेटरी – सचिव	प्रेसिडेण्ट – राष्ट्रपति
पार्लियामेण्ट – संसद	विचलित – चंचल, अस्थिर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1.लेखक के अनुसार प्रजातंत्र में किसी व्यक्ति को शासन करने का अधिकार तब तक है, जब तक कि–

(अ) वह स्वयं छोड़ना न चाहे (ब) पाँच वर्ष न हो जाय

(स) जब तक लोगों की इच्छा हो (द) अगले चुनाव न हो ( )

2.लेखक ने विरोधी पक्ष का महत्त्व माना है कि –

(अ) वह सरकार का विरोध करने के लिए होता है

(ब) वह सरकार की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण हेतु होता है

(स) वह सरकार के कार्य में अड़चन के लिए होता है

(द) वह निष्क्रिय होता है ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. सत्तारूढ़ से आप क्या समझते हैं ?

2. किसी समय सरकार बदलते ही सरकारी कर्मचारी बदलने अथवा हटा देने की परम्परा किस देश में थी ?

3.जब 13 अमेरिकी उपनिवेशों ने बगावत की तब उनका नेता कौन था ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1.जार्ज वाशिंगटन ने तीसरी बार अमेरिकी राष्ट्रपति बनने से इंकार क्यों कर दिया?

2.सार्वजनिक अन्तरात्मा से आप क्या समझते हैं?अम्बेडकरजी ने इसे किस प्रकार प्रजातंत्र की रक्षा के लिए आवश्यक बताया?

3. इंग्लैण्ड में विरोधी पक्ष के लिए क्या–क्या सहूलियत व सुविधाएँ हैं?

निबंधात्मक प्रश्न –

1.डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार सफल प्रजातंत्र के लिए किन–किन बातों पर ध्यान देना जरूरी है ?

2.भारत में प्रजातंत्र की कौन–कौनसी कमियाँ आपको नज़र आती हैं; इनके निराकरण के लिए आप क्या करना चाहेंगे ?

पाठ से आगे–

• पंचायती राज में प्रजातंत्र की प्रथम पाठशाला 'ग्राम–सभा' होती है। आप अपनी ग्राम–सभा, ग्राम–पंचायत, पंचायत समिति व जिला परिषद के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए।

•• राजस्थान में विधानसभा चुनाव किस प्रकार होता है ? आप वयस्क मताधिकार व मतदान का अधिकार के प्रति कितने जागरूक हैं ? चर्चा कर लिखिए।